E-Learning material prepared by Dr. Dhananjay Vasudeo Dwivedi, Assistant Professor, Department of Sanskrit, Dr. Shyama Prasad Mukherjee University, Ranchi

नाट्य की महत्ता एवं वैशिष्ट्य अथवा काव्येषु नाटकं रम्यम्

डा० धनञ्जय वासुदेव द्विवेदी

सहायक प्रोफेसर, संस्कृत विभाग,

डा० श्यामा प्रसाद मुखर्जी विश्वविद्यालय, राँची

१. **सार्वजनिक मनोरञ्जन का साधन**- नाट्य या रूपक एक ऐसा सार्वजनिक मनोरञ्जन का साधन (सार्ववर्णिक क्रीडनीयक) है जिसकी रचना सर्वजन हिताय तथा सर्वजनसुखाय हुई है, क्योंकि देवताओं के समाज हित चिन्तन की इच्छा को ध्यान में रखकर ही ब्रह्मा ने उसकी सृष्टि की है-

"क्रीडनीयकमिच्छामि दृश्यं श्रव्यं च यद् भवेत्।

तस्मात् सृजापरं वेदं पञ्चमं सार्ववर्णिकम्"।।

चार वेदों से केवल तीन वर्णों का ही हितसाधन होता है पर इस सार्ववर्णिक पञ्चम वेद (नाट्य) से तो निर्धन-धनी, सवर्ण-असवर्ण सभी का मनोरञ्जन तथा हित होता है। नाट्य से सभी वर्ग के लोग आनन्दानुभूति करते हैं क्योंकि दृश्य होने से वह हृद्य (रमणीय) है और श्रव्य होने व्युत्पत्तिप्रदः (उपदेशजनक)। इस प्रकार वह एक ही साथ सहृदय के हृदय में आनन्दानुभूति भी जगाता है तथा उसे कान्तासम्मित उपदेश भी देता है-

"दृश्यं हृद्यं श्रव्यं व्युत्पत्तिप्रदमिति प्रीतिव्युत्पत्तिप्रदम्"।

वस्तुतः नाट्यशास्त्र के आचार्यों ने नाट्य को सार्वजनिक मनोरञ्जन के साधन के रूप में स्वीकार किया है। महाकवि कालिदास ने यदि नाट्य को विभिन्न रुचि वाले प्राणियों के लिये एक सा आनन्द प्रदान करने वाला अद्वितीय समाराधन माना तो उसमें कोई अतिशयोक्ति नहीं- **"नाट्यं भिन्नरुचेः जनस्य बहुधाप्येकं समाराधनम्"।**

२. **व्यापकता तथा सर्वाङ्गीणता**- नाट्य अपने विषय की परिधि में सारे त्रैलोक्य के चर-अचर को समेट लेता है। उसमें समस्त त्रैलोक्य के भावों का अनुकीर्तन (प्रदर्शन) होता है। संसार का कोई ऐसा ज्ञान, शिल्प, विद्या, कला, योग और कर्म नहीं है जो नाट्य में न हो-

त्रैलोकस्य सर्वस्य नाट्यं भावानुकीर्तनम्।

न तज्ज्ञानं न तच्छिल्पं न सा विद्या न सा कला।

नासौ योगो न तत्कर्म नाट्येऽस्मिन् यन्न दृश्यते।।

नाट्य तो प्राणिमात्र के नाना भावों तथा अवस्थाओं के चित्रण से युक्त तथा लोकवृत्त के अनुकरण से संवलित ऐसी काव्यविधा है जो श्रमार्त तथा शोकार्त सभी लोगों के लिये विश्रान्तिजनक, हितकारक तथा उपदेशप्रद है-

"विश्रान्तिजननं लोके नाट्यमेतत् भविष्यति"।

विनोदजननं लोके नाट्यमेतद् भविष्यति"।।

३. सत्यं शिवं सुन्दरं का योग- नाट्य में ऐसा कोई भाव और अवस्था नहीं जिसका चित्रण न हो, ऐसा कोई लोकवृत्त नहीं जो उपेक्षित हो। उसमें तो उत्तम, मध्यम, अधम सभी नरों का चित्र है। यथार्थ होने से वह सत्य है, हितोपदेशजनक होने से शिव है और विश्रान्तिजनक तथा विनोदजनक क्रीडनीयक होने वह सुन्दर है। क्या सत्यं शिवं सुन्दरं का ऐसा मनोहर योग काव्य की किसी विधा में सम्भव है?

४. रसानुभूति की सुगमता- सहृदय के हृदय का आह्लाद अर्थात् सहृदय के हृदय में रसानुभूति जगाना ही काव्य का उद्देश्य है। रसानुभूति का मूल कारण स्थायी भाव का विभाव, अनुभव तथा व्यभिचारी भाव के साथ संयोग है-**"विभावानुभावव्यभिचारिसंयोगाद्रसनिष्पत्तिः"**। दृश्य-काव्य में रङ्गमंच पर उपस्थित पात्रों की वेशभूषा, उनके आकार, उनकी भाव-भङ्गिमा, कथोपकथन आदि से एक सजीव, मनोहर तथा हृदयग्राही बिम्ब खड़ा हो जाता है जिससे सहृदय जन का रसानुभूति का मार्ग निर्बाध ही नहीं प्रत्युत सुगम भी हो जाता है। इसी अभिप्राय को दृष्टि में रखकर **"नाटकान्तं कवित्वम्"** कहा गया है। वस्तुतः काव्य का चरम लक्ष्य नाट्य से प्राप्त हो सकता है।

श्रव्य काव्य की अपेक्षा दृश्य काव्य की श्रेष्ठता-

(१) श्रव्यकाव्य सहृदय श्रवण अथवा पठन के द्वारा रसानुभूति की चेष्टा करता है उसे अपनी कल्पना के सहारे तत्सम्बन्धी समस्त बिम्ब को कल्पित करना पड़ता है। उसमें शब्द ही मानसिक चित्र उपस्थित करते हैं। फलस्वरूप उसकी अनुभूति में वह तीव्रता सजीवता, तथा मनोहरता नहीं आ पाती जो अपेक्षित होती है। इसके विपरीत दृश्यकाव्य में

अभिनेताओं के द्वारा किये जाने वाले चार प्रकार के अभिनयों से वर्ण्य का साक्षात् बिम्ब खड़ा हो जाता है, फलस्वरूप उसे सहृदय की कल्पना के अनावश्यक प्रपञ्च में नहीं जाना पड़ता।

(२) श्रव्य काव्य के माध्यम से शिक्षित समाज ही रसानुभूति कर सरता है पर नाट्य के द्वारा सर्वसाधारण आनन्दानुभूति कर सकता है। इसीलिये भरत ने उसे सार्वजनिक मनोरञ्जन का साधन कहा है।

(३) दृश्य काव्य में दर्शक और नाट्यपात्रों में साक्षात् सम्बन्ध रहता है जिससे अनुभूति में तीव्रता आ जाती है। इसके विपरीत श्रव्य काव्य में कवि के माध्यम से सम्बन्ध होता है फलतः अनुभूति में तीव्रता नहीं आ पाती।

(४) दृश्य काव्य में संगीत, वाद्य, दृश्यविधान आदि काव्यात्मक प्रभाव की वृद्धि में विशेष रूप से सहायक होते हैं और उसकी कथावस्तु कथोपकथन के सहारे आगे बढ़ती है जिससे सहृदय का मन उसमें लगा रहता है। इसके विपरीत श्रव्यकाव्य में अधिकांश रूप में वर्णन के द्वारा वस्तु आगे बढ़ती है जिससे पाठक के हृदय में कौतूहल-वृत्ति जागृत नहीं होती जो आनन्द की एक प्रमुख कड़ी है।

(५) यद्यपि दृश्यकाव्य आनन्द नेत्र तथा श्रवण दोनों के द्वारा प्राप्त होता है पर वह (दृश्य काव्य) प्रधानतः चक्षुरिन्द्रिय का विषय होता है जबकि श्रव्यकाव्य श्रवणेन्द्रिय का। प्रत्यक्षतः देखी गयी वस्तु श्रवणगोचर वस्तु की अपेक्षा अधिक प्रभावोत्पादक एवं रमणीय होती है। इसीलिए कालि दास ने नाट्य को 'चाक्षुषयज्ञ' कहा है- **"शान्तं क्रतुं चाक्षुषम्"।**

(६) श्रव्य काव्य तथा दृश्य काव्य दोनों में कान्तासम्मित उपदेश रहता है। पर 'क्रीडनीयक' होने से नाट्य गुडप्रच्छन्न कटु औषध के समान चित्त को सन्मार्ग पर आरूढ़ होने की प्रेरणा देता है- **"इदमस्माकं गुडप्रच्छन्नकटु औषधकल्पं चित्तविक्षेपमात्रफलम्"**।

उक्त तथ्यों को ध्यान में रखने पर यह बात आपाततः स्पष्ट हो जाती है कि नाट्य अथवा रूपक काव्य के अन्य सभी भेदों की अपेक्षा आह्लादकर तथा मनोरम है। अतः उसके विषय में यह उक्ति सर्वांशतः सत्य एवं समीचीन है-**"काव्येषु नाटकं रम्यम्"।**